



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2020; 6(5): 258-264

© 2020 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 11-07-2020

Accepted: 15-08-2020

योगेन्द्र भारद्वाज

शोधच्छात्र, पीएच.डी., संस्कृत एवं
प्राच्यविद्याध्ययन संस्थान,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली, भारत

आयुर्वेदोक्त पञ्चमहाभूत तथा पर्यावरणीय संधारणीय विकास का अनुशीलन

योगेन्द्र भारद्वाज

प्रस्तावना

“हिताहितं सुखं दुःखं आयुस्तस्य हिताहितम् ।

मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स कथ्यते ॥”

आयुर्वेद को पारिभाषित करते हुए चरक संहिता में विश्लेषित किया गया है कि जिस शास्त्र में हित-अहित-सुख-दुःख और आयु अर्थात् स्वास्थ्य की चर्चा की गई हो, उसे आयुर्वेद कहते हैं।¹ सुश्रुत संहिता² (सूत्र.1.15) में आयुर्वेद को निम्नरूप से पारिभाषित किया गया है -

1. आयुषो वेदः आयुर्वेदः (The science of life is Ayurveda.) तथा “आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वाऽऽयुर्विन्दतीत्यायुर्वेदः ।
2. आयुः शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगः तदस्मिन्नायुर्वेदे विद्यते अस्तीत्यायुर्वेदः ।
3. आयुर्विद्यते ज्ञायतेऽनेनेत्यायुर्वेदः।

चरक संहिता में अन्यत्र विश्लेषण प्राप्त होता है - कस्मादायुर्वेदः? तत्रायुर्वेदयतीत्यायुर्वेदः, कथमिति चेत्, उच्यते- स्वलक्षणतः सुखासुखतो हिताहिततः प्रमाणाप्रमाणतश्च वेदयत्यतोऽप्यायुर्वेदः। तत्रायुष्याण्यनायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्माणि केवलेनोपदेक्ष्यन्ते तन्त्रेण ॥ 4

भारतीय चिन्तन परम्परा ने इस समस्त संसार को पञ्चमहाभूतों से निर्मित माना है। वेद में नासदीय सूक्त द्वारा इस संसार का मूल आकाश, वायु, जल, अग्नि और पृथिवी को स्वीकार

Corresponding Author:

योगेन्द्र भारद्वाज

शोधच्छात्र, पीएच.डी., संस्कृत एवं
प्राच्यविद्याध्ययन संस्थान,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली, भारत

1 चरक संहिता, सूत्रस्थानम्, 1.41

2 सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थानम्, 1.15

3 चरक संहिता, सूत्रस्थानम्, 30.20

4 चरक संहिता, सूत्रस्थानम् 30.23

किया गया है। पुराणों में भी इस जगत् का आविर्भाव इन्हीं पञ्चमहाभूतों से स्वीकृत है। उपनिषद् हों या भारतीय दर्शन, सभी ने इन पञ्चमहाभूतों को इस जगत् का मूलकारण स्वीकार किया है।

रामभक्त तुलसीदास ने भी “छित जल पावक गगन समीरा । पंच रचित यह अधम शरीरा॥” कहकर मानव शरीर को इन्हीं पञ्चमहाभूतों द्वारा रचित माना है। आयुर्वेद ऐहलौकिक और पारलौकिक, उभयविध श्रेय का शास्त्र है।⁵ यह भी उक्त है कि आयुर्वेद पञ्चविंशतितत्त्वात्मक पुरुष की सर्वाङ्गीण चिकित्सा का उपदेष्टा है, उसकी सीमा का रेखांकन नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यह सृष्टि के सर्वोत्कृष्ट प्राणी मानव के हित का प्रवर्तक विज्ञान है।⁶ त्रिकालज्ञ मनीषियों ने आयुर्वेद की मानवायुर्वेद, वृक्षायुर्वेद, पशुायुर्वेद आदि अनेक शाखा-प्रशाखाओं का विस्तार कर आयुर्वेद को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में स्थापित किया है। आयुर्वेद में स्वस्थ व्यक्ति को पारिभाषित करते हुए आचार्य सुश्रुत कहते हैं –

“समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियाः ।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥⁷

भारतीय संस्कृति में पर्यावरणीय सतत विकास की अवधारणा प्रारम्भ से ही विद्यमान रही है। यह मानव तथा पर्यावरण के मध्य सहयोग की भावना का विकास करती है। सर्वत्र वातावरण की विशुद्धि हेतु यज्ञ का विधान किया गया है, जिसमें सहयोग, शुद्धता, पर्यावरण के प्रति जिम्मेदारी की भावना, स्वास्थ्य आदि का समावेश किया जाता है। इस प्रसंग में पंचमहायज्ञ की चर्चा आवश्यक है। पंचमहायज्ञ समसामयिक “पर्यावरणीय सतत विकास” (Environmental Sustainable Development) की बात करते हैं। इनमें ब्रह्मयज्ञ का अर्थ वेदादि ग्रन्थों के अध्ययन द्वारा सद्मार्ग पर चलने को प्रेरित करता है। विद्या बांटने से वृद्धि को प्राप्त करती है, इस सिद्धान्त के अनुसार यह मानव को सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, अहिंसा, बन्धुत्व की भावना का विकास मानव व्यक्तित्व में करता है।

पितृयज्ञ मानव को उन महापुरुषों और अपने पूर्वजों के प्रति अपनी श्रद्धा और निष्ठा समर्पित करने का अवसर होता है,

⁵ अत्रायत्तमैहिकमामुष्मिकश्च श्रेयः ॥ सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थानम्, अध्याय- 1

⁶ न चैव ह्यस्ति सुतरामायुर्वेदस्य पारम् – चरक संहिता, विमानस्थानम्,

अध्याय- 8

⁷ सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थानम्, अध्याय-15

जिनके कारण आज मानव का अस्तित्व है और सदैव सत्य की जीत होती है, यह सिद्धान्त स्थापित है। देवयज्ञ मानव को “यज्ञ” सदृश पवित्र कार्य करने को प्रेरित करता है। ये अनुष्ठानादि कार्य एक मानव अन्य मानवों, पशु-पक्षियों, सामाजिक-सद्भाव और विश्वबन्धुत्व को प्राप्त करने हेतु करता है।

भूतयज्ञ से आशय अन्य भौतिक प्राणियों (पशु, पक्षी, कीट, जलचर, नभचर आदि) के साथ भी धान्य को साझा करने का एक अनुष्ठान जैसा है। संसार का सर्वाधिक बुद्धिमान प्राणी मानव है और मानव स्वयं अपने भोजन का निर्माण कर सकता है। जबकि अन्य सभी प्राणी इस कार्य में सिद्धहस्त नहीं होते हैं। इसलिए मानव का एक कर्तव्य यह भी है कि अन्य प्राणियों के लिए भोजन-जल की व्यवस्था भी करे, जिससे कोई भी प्राणी भूख-प्यास से मृत न हो। अतिथियज्ञ के अनुसार अतिथि के सत्कार व सम्मान को ध्यान में रखना होता है। प्राचीन परम्परा के अनुसार हमेशा घर में एक-दो लोगों का भोजन अतिरिक्त बनाकर रखा जाता था और कहीं-कहीं तो आज भी ऐसा होता है। पधारे हुए अतिथि को सम्मान तथा प्रेम प्रदानकर उसके मुख से पवित्र सद्वाक्यों से समृद्धि होती है। ऐसा विचार तो माना जाता है।

आर्यावर्तीय सनातन परम्परा में ऋषियों और मनीषियों ने इस बात का सदैव ध्यान रखा कि पञ्चमहाभूत सन्तुलित रहे। इसलिए वे समाज को सद्मार्ग के अनुसरण, आश्रम निर्माण कर पर्यावरण संरक्षण तथा प्रवचन आदि के माध्यम से अनवरत निर्देशित करते रहते थे। मत्स्यपुराण में वृक्षारोपण प्रोत्साहन हेतु उन्होंने कहा भी है – “दस कुओं के बराबर एक बावली का निर्माण करना होता है और दस बावलियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है। अतएव हमको वृक्षारोपण अवश्य करना चाहिए।”⁸

पञ्चमहाभूतों का मानव शरीर तथा जगत् के मध्य सम्बन्ध-विवेचन-

“सिद्धान्तो नाम सः यः परीक्षकैर्बहुविधं परीक्ष्य हेतुभिश्च साधयित्वा स्थाप्यते निर्णयः”⁹ अर्थात् मूल किसी भी पदार्थ के उस अवयव को कहते हैं, जो उत्पत्ति के समय सर्वप्रथम अस्तित्व में आये तथा उसके अवयवी के साथ अपृथक् रूप

⁸ दश कूप समा वापी, दशवापी समोहद्रः।

दशहृद समः पुत्रो, दशपुत्रो समो द्रुमः ॥ मत्स्यपुराण

⁹ चरक संहिता, विमानस्थानम्, 8.37

से रहता हुआ अवयवी का पोषण एवं धारण करता रहे, जिसके अभाव में अवयवी का अस्तित्व ही समाप्त हो जाये। परीक्षकों द्वारा अनेक बार परीक्ष्य विषयों की परीक्षा कर और हेतुओं के द्वारा उन परीक्ष्य विषयों को सिद्ध कर जो स्थायी निर्णय दिया जाता है, उसे सिद्धान्त कहते हैं। अतः जो सिद्धान्त मूल को लक्ष्य करके बनाये जाते हैं, उन्हें मौलिक सिद्धान्त कहते हैं। जैसे- यत्पिण्डे तत्ब्रह्माण्डे । यह एक मौलिक सिद्धान्त है कि जो इस शरीर में है, वहीं इस ब्रह्माण्ड में भी विद्यमान है। जैसे वायु के प्रभाव से यह पिण्ड गतिशील रहता है, मन आदि इन्द्रियां विषयासक्त होती हैं और पञ्चविध वायु इस शरीर का नियमन करती है। उसी प्रकार यह वायु संसार को भी गतिशीलता देती है, उसे नियमित करती है, ऋतु-परिवर्तन कराती है, खाद्यान्न उत्पादन में सहयोग करती है आदि।

इस संसार में जरायुज, उद्भिज, अण्डज, स्वेदज सभी प्राणी इन्हीं पञ्चमहाभूतों से बने हैं। स्तनपायी सारे जीव, कुत्ता, घोडा, हाथी आदि पशु, समस्त पक्षीगण, जीवन हेतु आवश्यक वायु, भोजन हेतु आवश्यक खाद्यान्न, व्यवसाय हेतु रत्नादि धातुएं, यातायात हेतु ईंधन, कीट व उनका भोजन, समस्त प्रकार की वनस्पति, वृक्ष आदि सबकुछ इन्हीं पञ्चमहाभूतों द्वारा रचित है।

पञ्चमहाभौतिक जगत्

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश- ये पाँच तत्त्व पञ्चमहाभूत हैं। इन्हीं से चेतनाधिष्ठान भूत मानव-शरीर, आहारद्रव्य तथा औषधद्रव्य बने हैं। आहारद्रव्यों के द्वारा शरीर में इन तत्त्वों की पूर्ति होती रहती है। इन तत्त्वों की वृद्धि या ह्रास से जब कोई विकार उत्पन्न होता है, तब उसे दूर करने के लिए तदनु रूप उन तत्त्वों को घटाने-बढ़ाने वाले द्रव्य दिये जाते हैं। इसी नियम को ब्रह्माण्डिक रूप में यदि देखा जाये, तो समस्त संसार इन्हीं पाँचों तत्त्वों से निर्मित है, जब संसार में कुछ समस्याओं अथवा आपदाओं की बारम्बारता दृष्टिगत होती है, तो उनके मूल पञ्चमहाभूतों को पहचानना चाहिए कि किस/किन पञ्चमहाभूत/पञ्चमहाभूतों में असन्तुलन है। जैसे वैद्य रोगी के रोग की पहचान वात-पित्त-कफ की अधिकता और न्यूनता को देखकर औषधि देता है और उस रोगी को नीरोग बना देता है।

त्रिदोषपरिशीलन :-

सृष्टि यद्यपि पाञ्चभौतिक है, किन्तु इन पञ्चमहाभूतों में पृथिवी अत्यन्त गुरू एवं स्थूल होने से तथा आकाश अत्यन्त लघु और सूक्ष्म होने से कार्यकर नहीं होते हैं। अतः शेष तीन जल, अग्नि और वायु ही कार्यकर होते हैं। प्रकृति में ये तीनों चन्द्र, सूर्य और वायु के रूप में प्राकृतिक क्रियाओं का संचालन-नियमन करते हैं। इसी प्रकार शरीर के अन्दर इनके प्रतिनिधि वात (वायु), पित्त (सूर्य) और कफ (जल) समस्त शारीरिक क्रियाओं का संचालन करते हैं। ध्यातव्य है कि वायु का कार्य विक्षेप अर्थात् अपने गतिकर्म से शारीरिक घटकों का संचालन और नियमन करना है, पित्त का कार्य आदान अर्थात् आग्नेय गुणों के कारण पाचन रूपान्तरण तथा शोषण करना है और कफ का कार्य विसर्ग अर्थात् जलीय गुणों के कारण शरीर में रस का संचार (पोषण) करना है।¹⁰

वातदोष परिशीलन :-

शरीर में वात, पित्त और कफ, तीनों दोष यद्यपि विद्यमान रहते हैं, तथापि तीनों में वात की प्रधानता रहती है। शाङ्गधर संहिता में भी लिखा है कि वात के अधीन ही सबकी गतियां हैं। वात के सापेक्ष ही पित्त और कफ दोष हैं।¹¹ वातदोष में वायु की प्रधानता होती है। जब तक यह प्राकृत स्थिति में देह में विद्यमान होता है, तो इसे यौगिक धातु के रूप में जाना जाता है और समस्त शारीरिक क्रियाएं नियमित होती हैं, किन्तु वायु के कुपित या वैकृत स्थिति प्राप्त करने पर यह वातदोष बनकर देह की समस्त क्रियाओं को अस्त-व्यस्त कर देता है। जबकि लोक में यह वातदोष के रूप में ही रूढ हो चुका है। आचार्य चरक का कथन है कि वायु शरीर में चलायमान है और औषधगुण भी शरीर में होता है। औषधगुण और वायु का एकाश्रयसम्बन्ध होने से अपने गुण के समान गुण वाले द्रव्यों के संयोग से वात की वृद्धि और विपरीत गुणों वाले द्रव्यों के सेवन से वात का शमन होता है। वात प्राकृत और वैकृत (अकुपित और कुपित) नामक दो प्रकार का होता है।

वात शरीर में पञ्चविध वायु (प्राण, उदान, समान, व्यान, अपानवायु) के भेद से पूरे शरीर में विद्यमान है। प्राणवायु हृदय, उरःस्थान, मुख, नासिका आदि में रहकर समस्त शारीरिक अवयवों को संचालित करती है। इस देह को

¹⁰ आयुर्वेद का इतिहास एवं परिचय, अध्याय-15

¹¹ पित्तं पङ्गुः कफः पङ्गुः पङ्गुवो मलधातवः ।

वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छति मेघवत् ॥ शाङ्गधर संहिता अध्याय- 6

गतिशीलता देती है।¹² वायु अन्न को शरीर के भीतरले जाकर उसे प्राणधारक बनाती है, इसलिए उसके विषय में “कालावन्नगताः प्राणाः” कहा गया है। उदानवायु को चरक ने “प्रवर्तको वाचः” अर्थात् वाणी को निकालने वाली भी कहा है। समानवायु का कर्म अग्नि को तेज करना है, यथा-समीरणोऽग्नेः। सुश्रुत ने भी ऐसा ही संकेत किया है।¹³ व्यानवायु पूरे शरीर में संचरणशील है, जो शारीरिक चेष्टाओं की प्रवर्तक, शारीरिक धातुओं का व्यूह करने वाली, छोटे-बड़े स्रोतों का भेदन (खोलने) वाली और विकृत धातु और मलों को सुखाने वाली है। अपानवायु के शरीर में अनेक प्रकार के मलों को बाहर निकालती है और गर्भ को धारण कराती है। इस सम्बन्ध में सुश्रुत ने भी भोजनोपरान्त पचित अन्न को मल रूप में मुक्त करने आदि का कार्य अपानवायु का बताया है।¹⁴ इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कुपित वायु शरीर को अनेक प्रकार के रोगों से संतप्त करती है तथा बल, वर्ण, सुख और आयु का नाश आदि करती है। यदि कुपित वायु की स्थिति अधिक तीव्रता प्राप्त करती है, तो मनुष्य की मृत्यु तक हो जाती है।

चरक ने वात दोष के लक्षण रुक्ष, शीतल, लघु, दारुण, खर, विशद माने हैं।¹⁵ यहां ध्यातव्य है कि समान गुणों के सेवन से वृद्धि होती है और विपरीत गुणों के सेवन से दोष में न्यूनता आती है।¹⁶ यदि वातदोष में न्यूनता अथवा उसका शमन करना हो, तो पूर्वोक्त रुक्षादि गुणों के विपरीत प्रभाव वाले कर्मों से वातशमन होता है, क्योंकि प्रकुपित करने वाले कारणों से विपरीत कारण वाले द्रव्य तथा कर्मों से धातुओं

¹² वायुर्यो वक्त्रसंचारी स प्राणो नाम देहधृक् ।

सोत्रः प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्ब्यते ॥ सुश्रुत संहिता

¹³ आमपक्वाशयचरः समानो वह्निसंगतः ।

सोऽन्नं पचितितज्जांश्च विशेषान्विनक्ति हि ॥

गुल्माग्निसादातीसारप्रभृतीन् कुरुते गदान् ॥ सुश्रुत संहिता अध्याय-1

¹⁴ पक्वाधानालयोऽपानः काले कर्षति चाप्यधः ।

समीरणः शक्रन्मूत्रशुक्रगर्भार्तवानि च ॥

कुद्धश्च कुरुते रोगान् घोरान् वस्तिगुदाश्रयान् ॥ सुश्रुत संहिता, अध्याय-1

¹⁵ किं वातगुणाः? रुक्षलघुशीतदारुणखरविशदाः षडिमे वातगुणाः भवन्ति ।

चरक संहिता अध्याय-12

रुक्षः शीतो लघुः सूक्ष्मश्चलोऽथ विशदः खरः ।

विपरीतगुणैर्द्रव्यैः मारुतः संप्रशाम्यति ॥ चरक संहिता अध्याय-1

¹⁶ आयुर्वेद के दो नियम हैं-

(अ) सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम् अर्थात् समान गुणों के सेवन से वृद्धि होती है।

(आ) विरुद्धगुणसंयोगे हि भूयसा अल्पमवजीयते अर्थात् विपरीत गुणों के सेवन से वात, पित्त और कफ में न्यूनता आती है।

की शान्ति होती है। यथा- रुक्ष- स्निग्ध, शीत-उष्ण, लघु-गुरु, सूक्ष्म-स्थूल, चंचल-स्थिर, खर-क्षुब्ध, दारुण-मृदु आदि परस्पर वैपरीत्य स्वभाव वाले गुण हैं।

पित्तदोष परिशीलन

प्राकृत तथा विकृत पित्त के कर्म के सम्बन्ध में चरक संहिता में कहा गया है कि शरीर में पित्त के अन्तर्गत रहने वाली अग्नि ही कुपित तथा अकुपित (स्वस्थ) होकर शरीर में शुभ और अशुभ कार्यों को करने वाली होती है, जैसे- अन्न का पचना, न पचना, नेत्रों से देखना, न देखना, शरीर में तापक्रम का ठीक रहना, न रहना, शरीर में स्वभाविक गौर-कृष्णादि वर्णों (रूपों) का रहना और वैकृत (अस्वाभाविक) वर्णों का होना, शौर्य (पराक्रम), भय (डर), क्रोध, हर्ष, मोह, प्रसाद (प्रसन्नता) आदि द्वन्द्व जैसे- सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष आदि का होना और न होना, ये सभी कार्य पित्त के अन्तर्गत रहने वाली अग्नि ही सम्पादित करती है।¹⁷

रस-रक्त-मज्जा-वसादि धातुएं पित्त की गरमी से पक्क होते हुए क्रम से एक माह में शुक्र (Semen) धातु को उत्पन्न करते हैं। इसी रस से स्त्रियों में आर्तव (Ovum) बनता है, जो प्रतिमाह स्रावित होता है।¹⁸ जीवों के पाचनतन्त्र में भोजन के पचने और अपच होने में पित्ताग्नि का अतिमहत्त्वपूर्ण स्थान है। यह एक प्रक्रिया के माध्यम से भोजन को पचाकर उसे प्राकृत रूप में अमृत के समान शरीर में धारण कर पोषित करता है¹⁹ और वैकृत रूप में ग्रहण कर विष के समान पाचनतन्त्र में व्याधि उत्पन्न कर शारीरिक क्षय भी करता है।²⁰ ध्यातव्य है कि वात, पित्त और कफ, इन तीनों को त्रिस्थूण माना गया है। जैसे- वात शरीर धारण करने के लिए आवश्यक है, उसी प्रकार पित्त भी आवश्यक वस्तु है। अतः मरीचि ऋषि ने भी पित्त के कर्म व संगठन पर प्रकाश डालकर मानव शरीर में पित्त की

¹⁷ अग्निरेव शरीरे पित्तान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति, तद्यथा-पंक्तिमपक्तिं दर्शनमदर्शनं मात्रामात्रत्वमूष्मणः प्रकृतिविकृतिवर्णौ शौर्यं भयं क्रोधं हर्षं मोहं प्रसादमित्येवमादीनि चापराणि द्वन्द्वानीति ॥ चरक संहिता 12.11

¹⁸ पाचिताः पित्ततापेन रसाद्या धातवः क्रमात् ।

शुक्रत्वं यान्ति मासेन तथा स्त्रीणां रजो भवेत् ॥ शा.संहिता 6.10.

¹⁹ अथ पाचकपित्तेन विदग्धश्चात्मलां व्रजेत् ।

ततः समानमरुता ग्रहणीमभिनीयते ॥

ग्रहण्यां पच्यते कोष्ठवह्निना जायते कटुः ॥ शा.संहिता 6.2.

²⁰ मन्दवह्निविदग्धश्च कटुश्चात्मलो भवेद्रसः ।

विषभावं व्रजेद्वाऽपि कुर्याद्वा रोगसंकरम् ॥ शा. संहिता 6.5.

प्रधानता पर प्रकाश डाला है²¹ तथा रसप्रदीप में अग्नि को साक्षात् भगवान् और ईश्वर बताया है।²² पाचक पित्त का ही नाम अग्नि है, जिसकी मात्रा शरीर में किस प्रकार लाभदायक है, उसका भी रसप्रदीप में विवेचन किया गया है।

कफ दोष परिशीलन :-

शारीरिक भौतिक संघटन के सम्बन्ध में कफ में जलीय तत्त्व की प्रधानता होती है। इसका कार्य विसर्ग या जलीय गुणों के कारण शरीर में रस का संचार (पोषण) करना होता है।²³ शरीर में षड्रसों का आविर्भाव बिना जल की उपस्थिति के नहीं हो सकता है। शरीर के भीतर अन्न वात के द्वारा ले जाया जाता है, पित्त उसे पचाता है और कफ के माध्यम से वह मल के रूप में मुक्त होता है। कफ भी एक प्रकार का द्रव्य ही होता है। सामान्यतः कफ की प्रकृति सौम्य होती है। यह शरीर में स्थिरता, स्निग्धता, दृढता, भारीपन, पौरुष, बल आदि को उत्पन्न करता है। जब यह विकृत होता है, तो शरीर के उक्त गुणों में ह्रास होता है और शिथिलता, नपुंसकता, अज्ञान, मूर्च्छा, बुद्धिमान्द्य आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। लोक में दृष्टव्य है कि कफ की विकृति से इसमें कठोरता आती है और जब यह कफ गले के आस-पास जमने लगता है अथवा हृदय में एक ही स्थान पर एकत्रित होता है, तो श्वास-प्रश्वास ग्रहण करने में समस्या आती है और खांसी जैसी व्याधि उत्पन्न होकर शारीरिक बल का ह्रास करती हैं।

शाङ्गधर संहिता में वात-पित्त-कफ दोषों से सम्बन्धित व्यक्ति और उसके भीतर विद्यमान गुणों और प्रमुख लक्षणों को विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है।²⁴ इस प्रकार यह तथ्य भी प्रमाणित हो जाता है कि यह भौतिक शरीर पञ्चमहाभूतों से निर्मित है और उन्हीं से उत्पन्न वात, पित्तादि, रस-रक्तादि सप्तधातुएं²⁵ इस देह को पोषित और

²¹ आयुर्वर्णो बलं स्वास्थ्यमुत्साहोपचयौ प्रभा ।

ओजस्तेजोऽग्नयः प्राणाश्चोक्ता देहाग्निहेतुकाः ॥

शान्तेऽग्नौ म्रियते युक्ते चिरं जीवत्यनामयः ।

..... ह्यपक्वाद्रसादयः ॥ च. चि. अध्याय 15

²² जाठरो भगवानन्गिरीश्वरोऽन्नस्य पाचकः ।

सौध्याद्रसानाददानो विवेक्तुं नैव शक्यते ॥ रसप्रदीप (च.स. अ.12. पृ.252)

²³ आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त, अध्याय-15

²⁴ अल्पकेशः कृशो रुक्षो वाचालश्चलमानसः ।

आकाशचारी स्वप्नेषु वात प्रकृतिको नरः..... इत्यादि ॥शाङ्गधर संहिता 6.20

²⁵ रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र, ये सप्तधातुएं कहलाती हैं।

गतिमान करती हैं। पूर्व में वर्णित है कि पञ्चमहाभूतों से त्रिदोष, उनके रस के साथ सम्मिश्रण से रक्त और अन्य सप्तधातुएं क्रमानुसार निर्मित होती हैं।²⁶ इन्हीं के द्वारा गर्भस्थ शिशु का बीजारोपण और पोषण होता है, वही लोक में आकर मजबूत अस्थि वाला मानव बनता है और अन्ततः पञ्चमहाभूतों से बने इस संसार का भोगकर उन्हीं में विलयित हो जाता है।

आयुर्वेद में पर्यावरणीय सतत विकास –

आयुर्वेद के ग्रन्थों में पर्यावरणीय सतत विकास की कल्पना का आधार “माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः” के सिद्धान्त पर आधारित है, इसीलिए आयुर्वेद में पर्यावरण का संरक्षण और औषधीय पौधों को आयुर्वर्द्धन में उपयोग हेतु निर्दिष्ट किया गया है। आयुर्वेदीय ग्रन्थ अष्टाङ्गहृदयम् में जैव-विविधता के संरक्षण हेतु कहा गया है कि सर्वदा प्राणियों पर दयालु होना, दान देना, मन-वचन-कर्म में शुद्धता व नियन्त्रण तथा दूसरों के कार्यों में साफल्य-भावना रखना चाहिए-

आर्द्रसन्तानता त्यागः कायवाक्चेतसां दमः ।

स्वार्थबुद्धिः परार्थेषु पर्याप्तमिति सद्व्रतम् ॥²⁷

पर्यावरणीय जैव विविधता के संरक्षण के विषय में अष्टाङ्गहृदयम् में वर्णन है कि सभी प्राणियों को (न्यूनातिन्यून और स्थूलातिस्थूल) को आत्मवत् समझकर दयादृष्टि से देखना चाहिए-

आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलकम् ॥ 28

आचार्य चरक कहते हैं कि वातावरण की शुद्धता हेतु वृक्षारोपण अत्यावश्यक है। वृक्षारोपण वायु को शुद्धता प्राप्त कराने महत्त्वपूर्ण कारक है -

शोधनं रोपणं रक्षावर्धनं वायुवारिणः ।

वनानां वन्यवस्तूनां भूमेः संरक्षणं वरम् ॥²⁹

“रसासृङ्गांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राणि धातवः ॥” अष्टाङ्गहृदयम् 1.13

²⁶ रसाद् रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते ।

मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जः शुक्रं तु जायते ॥ सुश्रुत संहिता 14.10

²⁷ अष्टाङ्गहृदयम्, सूत्रस्थान, 2.46

²⁸ अष्टाङ्गहृदयम्, सूत्रस्थानम् 2.23

वहीं आयुर्वेद अपरिग्रह अर्थात् आवश्यकता से अधिक एकत्रित न करने की भावना को प्रदर्शित करता है-

भोजनं प्राणरक्षार्थं विद्यते नात्रसंशयः ।

अधिकं हानये तस्मात् युक्ताहारपरो भवेत् ॥³⁰

अर्थात् भोजन को प्राणरक्षा के निमित्त ही ग्रहण करना चाहिए, अन्यथा वह देह को हानिकर होता है। यहां भोजन की आवश्यकता और प्राणरक्षा से आशय विषय-वस्तुओं के लोभ को छोड़कर आवश्यकतानुरूप संसाधनों के संचय करने से है। पुनः आचार्य वाग्भट्ट कहते हैं -

“नित्यं हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी व्यसनेष्वसक्तः ।

दाता समः सत्यपरा क्षमावान् आप्तोपसेवी च भवत्यरोगः ॥

31

आचार्य वाग्भट्ट के अनुसार आहार-विहार में शुद्धता, व्यसनों से मुक्त, दानी, समता देखने वाला, सत्यवक्ता, क्षमावान् और सेवाभाव वाला व्यक्ति नीरोगी होता है और यही गुण पर्यावरणीय सतत विकास का आधार हैं, क्योंकि क्षमा, सेवाभाव, समत्व और दानभाव से जैव-संरक्षण, सत्यवक्तव्य से लोभ-मुक्ति अर्थात् अन्धाधुन्ध औद्योगीकरण से मुक्ति और व्यसनों से मुक्ति अर्थात् शुद्ध समाज के निर्माण से पर्यावरण संरक्षण तथा सतत विकास की प्राप्ति संभव है। इसी प्रकार अष्टाङ्गहृदयम् में कहा गया है कि सभी प्राणी सुख चाहते हैं और दूसरों के प्रति सुखानुकूल व्यवहार करना चाहिए अर्थात् धर्म में प्रवृत्त होना चाहिए।³² यहां धर्म का आशय प्राणिमात्र के कल्याण से है।

आचार्य चरक ने नदियों के जल की शुद्धता और नदियों के जल से स्वास्थ्य-लाभ के सम्बन्ध में विवेचन करते हुए नदी-संरक्षण की भावना को पुष्ट किया है। वर्तमानकाल में प्रदूषित होती हुई गंगा, यमुना, गोमती जैसी नदियों के संरक्षण में आचार्य चरक अत्यन्त प्रासंगिक हैं-

नद्यः पाषाणसिकतावाहिन्यो विमलोदकाः ।

²⁹ चरक संहिता, सूत्रस्थानम्

³⁰ चरक संहिता, सूत्रस्थानम्

³¹ भावप्रकाश, वाग्भट्ट

³² सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः ।

सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत् ॥ अष्टाङ्गहृदयम्, सूत्रस्थानम्, 2.20

मलयप्रभवा याश्च जलं तास्वमृतोपमम् ॥

खात्पततसोमवाय्वर्कैः स्पृष्टं कालानुवर्तिभिः ।

शीतोष्णस्निग्धरुक्षाद्यैर्यथासन्नं महीगुणैः ॥

शीतं शुचिं शिवं मृष्टं विमलं लघुषड्गुणम् ॥³³

अतएव आयुर्वेद में पर्यावरणीय सतत विकास की अवधारणा स्पष्ट रूप से प्राप्त होती है। आयुर्वेदानुसार यह जैविक शरीर तथा ब्रह्माण्ड आकाशादि पञ्चमहाभूतों से बना हुआ है। जब तक मानव प्राकृतिक पर्यावरणीय संसाधनों का उपभोग सीमित स्तरानुरूप करता है, तब तक प्रकृति से अनेक संसाधन प्राप्त करता है। किन्तु जब वह इन पर्यावरणीय संसाधनों का अतिदोहन करता है और संधारणीयता की पराकाष्ठा को पार करता है, तो यही महाभूत विनाश का कारण भी बनते हैं। जैसे मानव देह महाभूतों के असन्तुलन से अस्वस्थ हो जाता है, उसी प्रकार ब्रह्माण्ड भी अस्वस्थ हो जाता है।

“यत्पिण्डे तत्ब्रह्माण्डे” के सिद्धान्तानुसार जिस प्रकार अस्वस्थ मानव शरीर को स्वस्थ बनाया जाता है, तदनुसार इस ब्रह्माण्ड की अस्वस्थता को भी पञ्चमहाभौतिक सन्तुलन से स्वस्थ कर संधारणीय विकास (Sustainable Development) को प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए ध्यातव्य है कि वर्तमान समय में विकास तो आवश्यक है किन्तु उसे पर्यावरण की बलि देकर कदापि प्राप्त नहीं किया जा सकता है। आयुर्वेद इसी पर्यावरणीय संधारणीय विकास की बात करता है।

भारतीय सन्दर्भ में उत्तराखण्ड, शिमला, अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह के जंगलों में आग, वैश्विक सन्दर्भ में कैलीफोर्निया, अमेजन के जंगलों, इंडोनेशिया के जंगलों में आग लगने के उदाहरण सर्वत्र विद्यमान हैं। भारतीय सन्दर्भ में चेन्नई से भू-जल पूर्ण रूप से समाप्त हो चुका है और यही स्थिति बंगलुरु (कर्नाटक) की है। कुछ समय उपरान्त इसी स्थिति का शिकार दिल्ली, मुम्बई को भी होना पड सकता है। वैश्विक सन्दर्भ में केपटाउन तथा दक्षिण अफ्रीकी देश पानी की समस्या से गम्भीर रूप से प्रताडित हैं। पृथ्वी का मरुस्थलीकरण हो रहा है और निवास करने के स्थान में सतत कमी आ रही है, किन्तु जनसंख्या नियन्त्रण नहीं हो पा रहा है। आकाश में रात्रि में चांद और तारे दिखाई नहीं देते हैं, कारण यह है कि विद्युत प्रकाश भी अनियन्त्रित है। जलवायु परिवर्तन के कारण ग्लेशियर पिघल रहे हैं।

³³ चरक संहिता, सूत्रस्थानम्, अध्याय-27

परिणामस्वरूप सामुद्रिक जलस्तर वृद्धि के कारण द्वीप डूबने लगे हैं और वनस्पतिजात, प्राणिजात के सामने विनाश की रेखा खिंच गई है। इस प्रकार देखा जाये, तो पूरा संसार इन प्राकृतिक आपदाओं से ग्रसित है। यदि इनके मूल में देखा जाये, तो पता चलेगा कि यह सबकुछ पञ्चमहाभौतिक असन्तुलन के कारण हुआ है। यदि इस असन्तुलन को किसी भी प्रकार सन्तुलित किया जाये, तो इस संसार का प्रतिसर्ग होने से बचाया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची

प्राथमिक ग्रन्थ

1. वाग्भट्ट, *अष्टाङ्गहृदयम्*, निर्मलाहिन्दीटीकासहित, ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 2003.
2. चरक, *चरकसंहिता*, सविमर्शविद्योदिनीहिन्दीव्याख्यासहित, श्रीअग्निवेश, डा. गोरखनाथ चतुर्वेदी, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, 2001.
3. सुश्रुत, *सुश्रुतसंहिता*, आयुर्वेदतत्त्वसंदीपिका हिन्दीव्याख्या, प्रथमभाग, (डा. अम्बिकादत्तशास्त्री) चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2002.
4. सुश्रुत, *सुश्रुतसंहिता* (व्या०- अनन्तराम शर्मा), वाराणसी : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 2015.
5. शाङ्गधर, *शाङ्गधरसंहिता*, (व्या०- डॉ. श्रीमती शैलजा श्रीवास्तव), वाराणसी : चौखम्बा ओरियन्टालिया, चतुर्थ 2004.
6. मिश्र, भाव, भावप्रकाश, विद्योतनी भाषाटीकासंवलित (श्री ब्रह्मशंकर मिश्र) चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2002.
7. माधव, *माधवनिदानम्*, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, संशोधित संस्करण, वि. संवत् 2064.

द्वितीयक ग्रन्थ

1. शर्मा, आचार्य प्रियव्रत, *द्रव्यगुणविज्ञान*, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि. संवत् 2035
2. कस्तुरे, हरिदास श्रीधर, *आयुर्वेदीय पंचकर्म विज्ञान*, आयुर्वेद भवन लिमिटेड, इलाहाबाद.2018.
3. रामगोपाल शास्त्री, *वेदों में आयुर्वेद*, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, 2003.
4. त्रिपाठी, रविदत्त, *पदार्थ विज्ञान*, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2017.
5. रामसिंह, *आयुर्वेद का इतिहास*, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2018.